ॐ

सिरि-भगवंत-पुप्फदंत-भूदबलि-पणीदो

छक्खंडागमो

सिरि-वीरसेणाइरिय-विरइय-धवला-टीका-समण्णिदो

तस्स

पढमखंडे जीवट्ठाणे

खेत्ताणुगमो

लोयालोयपयासं गोदमथेरं पुणो जिणं वीरं ।
णमिऊण[1] खेत्तसुत्तं जहोवएसं पयासेमो ।।

केवलज्ञानरूप सूर्यसे लोक और अलोकके प्रकाशक अर्थात् सर्वज्ञ, गोतम अर्थात् उत्तमवाणीके स्थविर[2] अर्थात् विधाता (दिव्यध्वनिके प्रणेता) और जिन अर्थात् वीतराग ऐसे त्रिविध विशेषणविशिष्ट श्रीवीर भगवानको; अथवा द्वादशांग ग्रन्थ-रचनासे प्रकाशित किया है, लोक और अलोकको जिन्होंने ऐसे, तथा जिन अर्थात् काम-क्रोधादि भाव शत्रुओंके जीतनेवाले, और वीर[3] अर्थात् विशेषरूपसे जो प्राणियोंको मोक्षके लिए प्रेरणा करते हैं, या मोक्षमार्गको ओर चलाते हैं, ऐसे गौतमस्थविर श्रीइन्द्रभूति गणधरको नमस्कार करके क्षेत्रसूत्रको अर्थात् क्षेत्रानुयोगद्वारसम्बन्धी सूत्रोंके अर्थको जैसा उपदेश अर्थरूपसे दिव्यध्वनिके द्वारा श्रीवीर भगवानने दिया और ग्रन्थरूपसे श्री गौतम गणधरने दिया, उसीके अनुसार हम (वीरसेन) भी प्रकाशित करते हैं ।

१ म १ प्रतौ ‘ णमियूण ’ इति पाठः ।

२ ‘ थेरो विही विरिंचो ’ पा. ल. ना. २. थेरो के. थेरो ब्रह्मा. दे. ना. मा. ५,२९. स्थविरः..... धाता विधाता. है. को. २, १२५-१२६.

३ विशेषेण ईरयति मोक्षं प्रति प्रेरयति गमयति वा प्राणिन इति वीरः । (अभि. रा. वीर.)

खेत्ताणुगमेण दुविहो णिद्देसो, ओघेण आदेसेण य[1] ॥ १ ॥

किंफलो खेत्ताणिओगद्दारस्स अवयारो ? उच्चदे । तं जहा- संताणिओगद्दारादो अत्थित्तेणावगयाणं दव्वाणिओगद्दारे अवगयपमाणाणं चोद्दसजीवसमासाणं खेत्तपमाणावगमफलो[2] । अथवा अणंतो जीवरासी असंखेज्जपएसिए लोगागासे किं सम्मादि, ण सम्मादि त्ति संदेहेण घुलंतस्स[3] सिस्सस्स संदेहविणासणट्ठो वा खेत्ताणिओगद्दारस्स अवयारो । एत्थ खेत्तं णिक्खिविदव्वं । णिक्खेवो त्ति किं ? संशये विपर्यये अनध्यवसाये वा स्थितं तेभ्योऽपसार्य निश्चये क्षिपतीति निक्षेपः[4] । अथवा बाह्यार्थविकल्पो निक्षेपः । अप्रकृतनिराकरणद्वारेण प्रकृतप्ररूपको[5] वा । उक्तं च-

अपगयणिवारणट्ठं पयदस्स परूवणाणिमित्तं च ।
संसयविणासणट्ठं तच्चत्थवधारणट्ठं च ॥ १ ॥

क्षेत्रानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है, ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश ॥ १ ॥

शंका- यहां क्षेत्रानुयोगद्वारके अवतारका क्या फल है ?

समाधान- उक्त शंकाका उत्तर देते हैं । वह इस प्रकार है- सत्प्ररूपणा नामके अनुयोगद्वारसे जिनका अस्तित्व जान लिया है, तथा द्रव्यानुयोगद्वारमें जिनका संख्यारूप प्रमाण जान लिया है, ऐसे चौदह जीवसमासोंके (गुणस्थानोंके) क्षेत्रसंबंधी प्रमाणका जानना ही क्षेत्रानुयोगद्वारके अवतारका फल है । अथवा, असंख्यात प्रदेशवाले लोकाकाशमें अनन्त प्रमाणवाली जीवराशि क्या समाती है, या नहीं समाती है, इस प्रकारके संदेहसे घुलनेवाले शिष्यके संदेहके विनाश करनेके लिए क्षेत्रानुयोगद्वारका अवतार हुआ है ।

इस क्षेत्रानुयोगद्वारके प्रारम्भमें क्षेत्रका निक्षेप करना चाहिये ।

शंका- निक्षेप किसे कहते हैं ?

समाधान- संशय, विपर्यय और अनध्यवसायमें अवस्थित वस्तुको उनसे निकालकर जो निश्चयमें क्षेपण करता है, उसे निक्षेप कहते हैं । अथवा, बाहरी पदार्थके विकल्पको निक्षेप कहते हैं, अथवा, अप्रकृतका निराकरण करके प्रकृतका प्ररूपण करनेवाला निक्षेप है । कहा भी है-

अप्रकृतके निवारण करनेके लिये, प्रकृतके प्ररूपण करनेके लिये और तत्त्वार्थके अवधारण करनेके लिये निक्षेप किया जाता है ॥ १ ॥

---

१ क्षेत्रमुच्यते, तत् द्विविधम् । सामान्येन विशेषेण च ॥ स. सि. १, ८.

२ मु. १-२ प्रतौ वगमफलो । त. प्रतौ.

३ उपायो न्यास इष्यते । लघीय ३, ५२. तदधिगतानां वाच्यतामापन्नानां वाचकेषु भेदोपन्यासो न्यासः । लघीय. ३, ७४. विवृत्तिः ।

४ स किमर्थः ? अप्रकृतनिराकरणाय प्रकृतनिरूपणाय च । स. सि. १, ५. अप्रस्तुतार्थापाकरणात् प्रस्तुतार्थव्याकरणाच्च निक्षेपः फलवान् । लघीय. स्वो. वि. पृ. २६.

सो च एत्थ चउव्विहो णिक्खेवो[1] णाम-ट्ठवणा-दव्व-भावखेत्तभेएण। कधं णिक्खेवस्स चउव्विहत्तं ? दव्वट्ठिय-पज्जवट्ठियणयावलंबिवयणवावारादो। उत्तं च–

णामं ठवणा दवियं ति एस दव्वट्ठियस्स णिक्खेवो।
भावो दु पज्जवट्ठियपरूवणा एस परमत्थो[2] ॥ २ ॥

जीवाजीवुभयकारणणिरवेक्खो अप्पाणम्हि पयट्ठो[3] खेत्तसद्दो णामखेत्तं। सो च णामणिक्खेवो वयण-वत्तव्वणिच्चज्झवसायमंतरेण ण होदि त्ति, तब्भव-सरिससामण्णणिबंधणो त्ति वा, वाच्य-वाचकशक्तिद्वयात्मकैकशब्दस्य पर्यायार्थिकनये

वह निक्षेप यहां पर नामक्षेत्र, स्थापनाक्षेत्र, द्रव्यक्षेत्र और भावक्षेत्रके भेदसे चार प्रकारका है।

शंका– निक्षेप चार प्रकारका कैसे है ?

समाधान– द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक नयके आश्रय करनेवाले वचनोंके व्यापारकी अपेक्षासे निक्षेप चार प्रकारका होता है। कहा भी है–

नाम, स्थापना और द्रव्य ये तीन निक्षेप द्रव्यार्थिकनयकी प्ररूपणाके विषय हैं और भावनिक्षेप पर्यायार्थिकनयकी प्ररूपणाका विषय है। यही परमार्थ सत्य है ॥ २ ॥

जीव, अजीव और उभयरूप कारणोंकी अपेक्षासे रहित होकर अपने आपमें प्रवृत्त हुआ 'क्षेत्र' यह शब्द नामक्षेत्रनिक्षेप है। वह नामनिक्षेप, वचन और वाच्यके नित्य अध्यवसाय अर्थात् वाच्य-वाचक-सम्बन्धके सार्वकालिक निश्चयके विना नहीं होता है। इसलिये अथवा तद्भव-सामान्य-निबन्धनक और सादृश्य-सामान्य-निमित्तक होता है। इसलिये अथवा वाच्य-वाचकरूप दो शक्तियोंवाला एक शब्द पर्यायार्थिक नयमें असंभव है। इसलिये, द्रव्यार्थिक-नयका विषय है, ऐसा कहा जाता है।

विशेषार्थ– यहां पर नामनिक्षेपको द्रव्यार्थिकनयका विषय बतलानेके लिए तीन हेतु दिये हैं, जिनका अभिप्राय क्रमशः इस प्रकार है। १) नामनिक्षेप वचन और वाच्यके नित्य अध्यवसायके विना नहीं होता है, इसलिए यह द्रव्यार्थिकनयका विषय है, अर्थात्, इस 'शब्दसे यह पदार्थ जानना चाहिए' इस प्रकारका संकेत किये जानेसे शब्द अपने वाच्यका वाचक होता है। यदि यह संकेत या वाच्य-वाचकका सम्बन्ध नित्य न माना जाय तो भिन्न देश या भिन्न कालमें उस शब्दसे उसके वाच्यरूप अर्थका ज्ञान नहीं हो सकता है। किन्तु 'देवदत्त' आदि जो नाम किसी व्यक्तीके बाल्यावस्थामें रखे गये थे, वह आज वृद्धावस्थामें भी समानरूपसे उस व्यक्तीके वाचक देखे जाते हैं, इससे सिद्ध होता है कि वचन और वाच्यके मध्यमें जो सम्बन्ध है, वह नित्य है और नित्यताका द्रव्यके अतिरिक्त अन्यत्र पाया जाना

१ म १ प्रतौ 'सो च' इत्यधिकः पाठः।

२ स. त. १, ६.

३ प्रतिषु 'पयट्ठो' इति पाठः।

असंभवाद्वा दव्वट्ठियणयस्सेत्ति वुच्चदे। कट्ठ-दंत-सिलादीणि सब्भावासब्भावसरूवाणि बुद्धीए इच्छिदखेत्तेणेयत्तमुवगयाणि ट्ठवणा णाम। सब्भावासब्भावसरूवेण सव्वदव्ववावि त्ति वा, पधाणापधाणदव्वाणमेगत्तणिबंधणेत्ति वा ट्ठवणाणिक्खेवो

असंभव है, इससे सिद्ध होता है कि नामनिक्षेप द्रव्यार्थिकनयका विषय है। नामनिक्षेपको तद्भवसामान्य और सादृश्यसामान्य-निमित्तक कहा है, उसका अभिप्राय यह है कि, विवक्षित सुवर्णादि वस्तुके पूर्वापर-कालभावी कटक, केयूरादि पर्यायोंमें पर्यायकृत विभिन्नता रहते हुए भी उनमें एक ही सुवर्ण समानरूपसे सदा विद्यमान रहता है, इसलिये इस प्रकारकी समानताको तद्भवसामान्य कहते हैं। तथा किसी भी एक विवक्षित कालमें विद्यमान, किन्तु विभिन्न प्रकारके सुवर्णोंसे निर्मित कटक, कुण्डल, केयूरादि पर्यायोंमें 'यह भी सुवर्ण है, यह भी सुवर्ण है,' इत्यादि रूपसे सदृशता-बोधक जो समानता है, उसे सादृश्य-सामान्य कहते हैं। इसी प्रकारसे नामनिक्षेपरूप शब्द भी पूर्वापर-कालभावी 'क्षेत्र, क्षेत्र' इत्यादि शब्दोंमें समान प्रतीतिका उत्पादक होनेसे तद्भवसामान्यका निमित्त है। तथा, विवक्षित किसी भी एक कालमें विभिन्न देशवर्ती मथुरा, काशी इत्यादि क्षेत्रोंमें 'यह भी क्षेत्र है, यह भी क्षेत्र है' इत्यादि रूपसे उच्चारण किये जानेवाला शब्द सदृश-प्रत्ययका उत्पादक होनेसे सादृश्यसामान्यका भी निमित्त होता है और सामान्यको विषय करना ही द्रव्यार्थिकनयका विषय है; इसलिए नामनिक्षेपको द्रव्यार्थिकनयका विषय कहना युक्ति-संगत ही है। ३) नामनिक्षेपको द्रव्यार्थिक-नयका विषय बतानेके लिए तिसरी युक्ति यह दी है कि वाच्य-वाचकरूप दो शक्तियोंवाला एक शब्द पर्यायार्थिकनयमें असंभव है, अर्थात् पर्यायार्थिकनयका विषय नहीं हो सकता। इसका अभिप्राय यह है कि शब्दमें वाच्य-वाचकरूप दो शक्तियां द्रव्यार्थिकनयसे ही घटित होती हैं अर्थात् शब्द अपने वाच्यरूप अर्थका प्रतिपादक होता है, इसलिए तो उसमें इस नयसे वाचकशक्ति बन जाती है और स्वयं भी अपने स्वरूपका विषय होता है, इसलिये वाच्यशक्ति भी उसमें सर्वदा पाई जाती है। इस प्रकार इस नयसे किसी भी विवक्षित समयमें वह उक्त दोनों अर्थात् वाच्य-वाचकरूप शक्तियोंसे युक्त रहेगा और इसी कारणसे वह पर्यायार्थिकनयका विषय नहीं हो सकता, क्योंकि, यद्यपि आगममें शब्दको पुद्गलद्रव्यकी पर्याय कहा है तथापि जब वही शब्द वाच्य-वाचकरूप दो शक्तियोंवाला विवक्षित किया जाता है, तब वह इस अपेक्षासे द्रव्यार्थिकनयका विषय ही घटित होता है।

बुद्धिके द्वारा इच्छित क्षेत्रके साथ एकत्वको प्राप्त हुए, अर्थात् जिनमें बुद्धिके द्वारा इच्छित क्षेत्रकी स्थापना की गई है ऐसे सद्भाव और असद्भाव स्वरूप काष्ठ, दन्त और शिला आदि स्थापनाक्षेत्रनिक्षेप है। यह स्थापनानिक्षेप, तदाकार और अतदाकार स्वरूपसे सर्व द्रव्योंमें व्याप्त होनेके कारण, अथवा प्रधान और अप्रधान द्रव्योंकी एकताका कारण होनेसे द्रव्यार्थिकनयके अन्तर्गत है, ऐसा समझना चाहिये।

दव्वट्ठियणयवुल्लीणो[1]। दव्वखेत्तं दुविहं आगमदो णोआगमदो य। तत्थ आगमदो खेत्तपाहुडजाणओ अणुवजुत्तो। कधमेदस्स जीवदवियस्स सुदणाणावरणीयक्खओवसमविसिट्ठस्स दव्व-भावखेत्तागमवदिरित्तस्स आगमदव्वखेत्तववएसो? ण एस दोसो, आधारे आधेयोवयारेण कारणे कज्जुवयारेण लद्धागमववएसखओवसमविसिट्ठजीवदव्वावलंबणेण वा तस्स तदविरोहा। णोआगमदो दव्वखेत्तं तिविहं, जाणुगसरीरं

विशेषार्थ— स्थापनानिक्षेपको द्रव्यार्थिकनयका विषय सिद्ध करनेके लिए दो हेतु दिये गये हैं, जिनका अभिप्राय क्रमशः इस प्रकार है। १) स्थापनानिक्षेप सद्भाव और असद्भावरूपसे सर्व द्रव्योंमें व्याप्त है, इसका अर्थ यह है कि त्रिलोकवर्ती सभी द्रव्य यद्यपि स्वतंत्र एवं निश्चित आकारवाले हैं; तथापि व्यवहारके योग्य एवं विशेष अपेक्षासे विशिष्ट आकारसे परिकल्पित द्रव्यको साकार, सद्भावरूप या तदाकार कहा जाता है और उससे भिन्न आकारवाली वस्तुको असद्भाव या अतदाकार कहा जाता है। काष्ट या दांत वगैरह यद्यपि अपने स्वतंत्र आकारवाले हैं, तथापि उन्हींको हाथी, घोड़ा आदि किसी एक विवक्षित या निश्चित आकारसे घटित कर दिये जाने पर उन्हें तदाकार कहा जाता है और निश्चित आकारसे घटित नहीं होनेपर भी किसी एक वस्तुमें जो संकेतद्वारा किसी अन्य वस्तुकी परिकल्पना की जाती है, उसे अतदाकार कहते हैं। इस प्रकार यह स्थापनाका व्यवहार तदाकार और अतदाकाररूपसे सर्व द्रव्योंमें पाया जाता हैं, अर्थात् सभी द्रव्योंमें दोनों प्रकारका स्थापनानिक्षेप किया जा सकता है, जो कि क्षेत्रभेद या कालभेद होनेपर भी बन जाता है। इस कारणसे स्थापनानिक्षेपको द्रव्यार्थिकनयका विषय कहा है। २) प्रधान और अप्रधान द्रव्योंकी एकताका कारण कहनेका अभिप्राय यह है कि जिस वस्तुकी स्थापना की जाती है, वह प्रधान द्रव्य, तथा जिस वस्तुमें स्थापना की जाती है, वह अप्रधान द्रव्य कहलाता है। 'यह सिंह है' इस प्रकारसे स्थापनानिक्षेप असली सिंहरूप प्रधानद्रव्य और मिट्टी आदिके खिलौनेमें स्थापित सिंहरूप आकारवाले अप्रधान द्रव्यमें एकताका कारण अर्थात् एकत्वप्रतीतिका निमित्त होता है, इसलिए भी स्थापनानिक्षेप द्रव्यार्थिकनयका विषय है।

आगमद्रव्यक्षेत्र और नोआगमद्रव्यक्षेत्रके भेदसे द्रव्यक्षेत्र दो प्रकारका है। उनमेंसे क्षेत्रविषयक शास्त्रका ज्ञाता, किन्तु वर्तमानमें उसके उपयोगसे रहित जीव आगमद्रव्यक्षेत्र निक्षेप है।

शंका— श्रुतज्ञानावरणीय कर्मके क्षयोपशमसे विशिष्ट, तथा द्रव्य और भावरूप क्षेत्रागमसे रहित इस जीवद्रव्यके आगमद्रव्यक्षेत्ररूप संज्ञा कैसे प्राप्त हो सकती है?

समाधान— यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, आधाररूप आत्मामें आधेयभूत क्षयोपशमस्वरूप आगमके उपचारसे; अथवा, कारणरूप आत्मामें कार्यरूप क्षयोपशमके उपचारसे,

१ म २ प्रतौ 'णवमल्लीणो' इति पाठः।

भवियं तव्वदिरित्तं चेदि। तत्थ जाणुगसरीरं तिविहं, भवियं वट्टमाणं समुज्झादमिदि। समुज्झादं पि तिविहं चुदं चइदं चत्तदेहमिदि। भवदु पुव्विल्लस्स दव्वखेत्तागमत्तादो खेत्तववएसो, एदस्स पुण सरीरस्स अणागमस्स खेत्तववएसो ण घडदि त्ति? एत्थ परिहारो वुच्चदे। तं जधा– क्षियत्यक्षैषीत्क्षेष्यत्यस्मिन् द्रव्यागमो भावागमो वेति त्रिविधमपि शरीरं क्षेत्रम्, आधारे आधेयोपचाराद्वा। तत्थ भवियं खेत्तपाहुडजाणगभावी जीवो णिद्दिस्सदे। कथं जीवस्स खेत्तागमखओवसमरहिदत्तादो अणागमस्स खेत्तववएसो? न, क्षेष्यत्यस्मिन् भावक्षेत्रागम इति जीवद्रव्यस्य पुरैव क्षेत्रत्वसिद्धेः। जाणुगसरीर-भवियवदिरित्तदव्वखेत्तं दुविहं, कम्मदव्वखेत्तं णोकम्मदव्वखेत्तं चेदि। तत्थ कम्मदव्वखेत्तं णाणावरणादिअट्ठविहकम्मदव्वं। कथं कम्मस्स खेत्तववएसो?

अथवा प्राप्त हुई है आगमसंज्ञा जिसको ऐसे क्षयोपशमसे युक्त जीवद्रव्यके अवलम्बनसे जीवके आगमद्रव्यक्षेत्ररूप संज्ञाके होनेमें कोई विरोध नहीं आता है।

ज्ञायकशरीर, भव्य और तद्व्यतिरिक्तके भेदसे नोआगमद्रव्यक्षेत्र तीन प्रकारका है। उनमेंसे ज्ञायकशरीर तीन प्रकारका है; भावी ज्ञायकशरीर, वर्तमान ज्ञायकशरीर और अतीत ज्ञायकशरीर। इनमेंसे अतीत ज्ञायकशरीर भी च्युत, च्यावित और त्यक्तके भेदसे तीन प्रकारका है।

शंका– द्रव्यक्षेत्रागमके निमित्तसे पूर्वके शरीरको क्षेत्रसंज्ञा भले ही रही आवे, किन्तु इस अनागमशरीरके क्षेत्रसंज्ञा घटित नहीं होती है?

समाधान– उक्त शंकाका यहां परिहार कहते हैं। वह इस प्रकार है– जिसमें द्रव्यरूप आगम अथवा भावरूप आगम वर्तमानकालमें निवास करता है, भूतकालमें निवास करता था और आगामी कालमें निवास करेगा; इस अपेक्षा तीनों ही प्रकारका शरीर क्षेत्र कहलाता है। अथवा, आधाररूप शरीरमें आधेयरूप क्षेत्रागमका उपचार करनेसे भी क्षेत्रसंज्ञा बन जाती है।

नोआगम द्रव्यक्षेत्रके तीन भेदोंमेंसे जो आगामी कालमें क्षेत्रविषयक शास्त्रको जानेगा, ऐसे जीवको भावी नोआगमद्रव्यक्षेत्र कहते हैं।

शंका– जो जीव क्षेत्रागमरूप क्षयोपशमसे रहित होनेके कारण अनागम है, उस जीवके क्षेत्रसंज्ञा कैसे बन सकती है?

समाधान– नहीं, क्योंकि, 'भावक्षेत्ररूप आगम जिसमें निवास करेगा' इस प्रकारकी निरुक्तिके बलसे जीवद्रव्यके क्षेत्रागमरूप क्षयोपशम होनेके पूर्व ही क्षेत्रपना सिद्ध है।

ज्ञायकशरीर और भावीसे भिन्न जो तद्व्यतिरिक्त नोआगमद्रव्यक्षेत्र है, वह कर्मद्रव्यक्षेत्र और नोकर्मद्रव्यक्षेत्रके भेदसे दो प्रकार है। उनमेंसे ज्ञानावरणादि आठ प्रकारके कर्मद्रव्यको कर्मद्रव्यक्षेत्र कहते हैं।

न, क्षियन्ति[1] निवसन्त्यस्मिन् जीवा इति कर्मणां क्षेत्रत्वसिद्धेः। (जं) णोकम्मदव्वखेत्तं तं दुविहं, ओवयारियं पारमत्थियं चेदि। तत्थ ओवयारियं णोकम्मदव्वखेत्तं लोगपसिद्धं सालिखेत्तं बीहिखेत्तमेवमादि। पारमत्थियं णोकम्मदव्वखेत्तं आगासदव्वं। उत्तं च–

खेत्तं खलु आगासं तव्वदिरित्तं च होदि णोखेत्तं।
जीवा य पोग्गला वि य धम्माधम्मत्थिया कालो ॥ ३ ॥
आगासं सपदेसं तु उड्ढाधो तिरिओ वि य।
खेत्तलोगं वियाणाहि अणंत जिण-देसिदं[2] ॥ ४ ॥

एसो वि णिक्खेवो दव्वट्ठियस्स, दव्वेण विणा एदस्स संभवाभावादो। जं तं भावखेत्तं तं दुविहं, आगमदो णोआगमदो भावखेत्तं चेदि। आगमदो भावखेत्तं खेत्तपाहुडजाणुगो उवजुत्तो। णोआगमदो भावखेत्तं आगमेण विणा अत्थोवजुत्तो

शंका– कर्मद्रव्यको क्षेत्रसंज्ञा कैसे प्राप्त होती है ?

समाधान– नहीं, क्योंकि, जिसमें जीव 'क्षियन्ति' अर्थात् निवास करते हैं, इस प्रकारकी निरुक्तिके बलसे कर्मोंके क्षेत्रपना सिद्ध है।

तद्व्यतिरिक्त नोआगमद्रव्यका दूसरा भेद जो नोकर्मद्रव्यक्षेत्र है, वह औपचारिक और पारमार्थिकके भेदसे दो प्रकारका है। उनमेंसे लोकमें प्रसिद्ध शालिक्षेत्र, व्रीहि (धान्य) क्षेत्र इत्यादि औपचारिक नोकर्मतद्व्यतिरिक्त नोआगमद्रव्यक्षेत्र कहलाता है। आकाशद्रव्य पारमार्थिक नोकर्मतद्व्यतिरिक्त नोआगमद्रव्यक्षेत्र है। कहा भी है–

आकाशद्रव्य नियमसे तद्व्यतिरिक्त नोआगमद्रव्यक्षेत्र है और आकाशद्रव्यके अतिरिक्त जीव, पुद्गल, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय तथा कालद्रव्य नोक्षेत्र कहलाते हैं ॥ ३ ॥

आकाश सप्रदेशी है और वह ऊपर, नीचे और तिरछे सर्वत्र व्याप्त है। उसे ही क्षेत्रलोक जानना चाहिए। उसे जिन भगवानने अनन्त कहा है ॥ ४ ॥

यह आगम और नोआगमके भेदरूप द्रव्यक्षेत्रनिक्षेप भी द्रव्यार्थिकनयका विषय है, क्योंकि, द्रव्य अर्थात् सामान्यके विना यह निक्षेप संभव नहीं है।

जो भावक्षेत्रनिक्षेप है, वह आगमभावक्षेत्र और नोआगमभावक्षेत्रके भेदसे दो प्रकारका है। क्षेत्रविषयक प्राभृतके ज्ञाता और वर्तमानकालमें उसमें उपयुक्त जीवको आगमभावक्षेत्रनिक्षेप कहते हैं। जो आगमसे अर्थात् क्षेत्रविषयक शास्त्रके विना अन्य पदार्थमें उपयुक्त हो उस जीवको; अथवा, औदयिक आदि पांच प्रकारके भावोंको नोआगमभावक्षेत्र-निक्षेप कहते हैं।

१ क्षि निवासगत्योः।

२ आगासस्स पएसा उड्ढं च अहे य तिरियलोए य। आणाहि खित्तलोगं अणंत जिणदेसिअं सम्मं ॥ १९७ ॥ (अभि. रा. लोक.)

ओदइयादिपंचविधभावो वा[1]। एदेसु खेत्तेसु केण खेत्तेण पयदं ? णोआगमदो दव्वखेत्तेण पयदं। णोआगमदो दव्वखेत्तं णाम किं ? आगासं गगणं देवपथं गोज्झगाचरिदं अवगाहणलक्खणं आधेयं वियापगमाधारो भूमि त्ति एयट्ठो। कस्स खेत्तं ? सुण्णोयं भंगो। केण खेत्तं ? पारिणामिएण भावेण। कम्हि खेत्तं ? अप्पाणम्हि चेव। कधमेगत्थ आधाराधेयभावो ? ण सारे त्थंभ इदि एगत्थ वि आधाराधेयभावदंसणादो। केवचिरं खेत्तं ? अणादियमपज्जवसिदं। कदिविधं खेत्तं ? दव्वट्ठियणयं च पडुच्च एगविधं। अधवा पओजणमभिसमिच्च दुविहं,

---

शंका— ऊपर बतलाये गये इन क्षेत्रोंमेंसे यहां पर कौनसे क्षेत्रसे प्रयोजन है ?

समाधान— यहां पर नोआगमद्रव्यक्षेत्रसे प्रयोजन है।

शंका— नोआगमद्रव्यक्षेत्र किसे कहते हैं ?

समाधान— आकाश, गगन, देवपथ, गुह्यकाचरित (यक्षोंके विचरणका स्थान) अवगाहनलक्षण, आधेय, व्यापक, आधार और भूमि, ये सब नोआगमद्रव्यक्षेत्रके एकार्थक नाम हैं।

विशेषार्थ— अब धवलाकार निर्देश, स्वामित्व, साधन, अधिकरण, स्थिति और विधान इन प्रसिद्ध छह अनुयोगद्वारोंसे क्रमशः क्षेत्रका विचार करते हैं। इनमेंसे पूर्वमें जो निक्षेप या एकार्थ द्वारा क्षेत्रका विचार किया गया है, वह सब निर्देशसे अन्तर्गत समझना चाहिए।

शंका— क्षेत्र किसका है, अर्थात् इसका स्वामी कौन है ?

समाधान— यह भंग शून्य है, अर्थात् स्वामी कोई नहीं है।

शंका— किससे क्षेत्र होता है, अर्थात् क्षेत्रका साधन या करण क्या है ?

समाधान— पारिणामिक भावसे क्षेत्र होता है, अर्थात् क्षेत्रकी उत्पत्तिमें कोई दूसरा निमित्त न होकर वह स्वभावसे है।

शंका— किसमें क्षेत्र रहता है, अर्थात् इसका अधिकरण क्या है ?

समाधान— अपने आपमें ही यह रहता है, अर्थात् क्षेत्रका अधिकरण क्षेत्र ही है।

शंका— एक ही आकाशमें आधार-आधेय भाव कैसे संभव है ?

समाधान— नहीं; क्योंकि, 'सारमें स्तम्भ है' इस प्रकार एक वस्तुमें भी आधार आधेयभाव देखा जाता है।

शंका— कितने कालपर्यन्त क्षेत्र रहता है, अर्थात् क्षेत्रकी स्थिति कितनी है ?

समाधान— क्षेत्र अनादि और अनन्त है।

---

१. ओदइए ओवसमिए खइए अ तहा खओवसमिए अ। परिणामि सन्निवाए अ छव्विहो भावलोगो उ ॥ २०० ॥ (अभि. रा. लोक.)

लोगागासमलोगागासं चेदि । लोक्यन्ते उपलभ्यन्ते यस्मिन् जीवादिद्रव्याणि स लोकः । तद्विपरीतोऽलोकः । अधवा देसभेएण तिविहो, मंदरचूलियादो उवरिमुड्ढलोगो, मंदरमूलादो हेट्ठा अधोलोगो, मंदरपरिच्छिण्णो मज्झलोगो[1] त्ति । जधा दव्वाणि ट्ठिदाणि तधावबोधो अणुगमो । खेत्तस्स अणुगमो खेत्ताणुगमो, तेण खेत्ताणुगमेण सरीरस्सेव दुविहो णिद्देसो । णिद्देसो पदुप्पायणं कहणमिदि एयट्ठो । ओघेण द्रव्यार्थिकनयावलम्बनेन, आदेसेण पर्यायार्थिकनयावलम्बनेन चेदि द्विविधो निर्देशः । किमट्ठमुभयथा णिद्देसो कीरदे? न, उभयनयावस्थितसत्त्वानुग्रहार्थत्वात् । ण य तइओ अत्थि, णयद्दयसंट्ठियजीववदिरित्तसोदाराणं असंभवादो ।

शंका— क्षेत्र कितने प्रकारका है ?

समाधान— द्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षा क्षेत्र एक प्रकारका है। अथवा, प्रयोजनके आश्रयसे क्षेत्र दो प्रकारका है, लोकाकाश और अलोकाकाश । जिसमें जीवादि द्रव्य अवलोकन किये जाते है, पाये जाते हैं, उसे लोक कहते हैं । इसके विपरीत जहां जीवादि द्रव्य नहीं देखे जाते हैं, उसे अलोक कहते हैं । अथवा देशके भेदसे क्षेत्र तीन प्रकारका है— मंदराचल (सुमेरुपर्वत) की चूलिकासे ऊपरका क्षेत्र ऊर्ध्वलोक है । मंदराचलके मूलसे नीचेका क्षेत्र अधोलोक है । मंदराचलसे परिच्छिन्न अर्थात् तत्प्रमाण मध्यलोक है ।

जिस प्रकारसे द्रव्य अवस्थित हैं, उस प्रकारसे उनको जानना अनुगम कहलाता है । क्षेत्रके अनुगमको क्षेत्रानुगम कहते हैं । उससे अर्थात् क्षेत्रानुगमसे शरीरके (शरीर सामान्य और मुखादि अंगोपांग विशेष) निर्देशके समान दो प्रकारका निर्देश किया गया है । निर्देश, प्रतिपादन और कथन, ये सब एकार्थक हैं । ओघसे अर्थात् द्रव्यार्थिकनयके अवलम्बनसे और आदेशसे अर्थात् पर्यायार्थिकनयके अवलम्बनसे निर्देश दो प्रकारका है ।

शंका— दोनों नयोंकी अपेक्षासे निर्देश किसलिये किया जाता है ?

समाधान— नहीं, क्योंकि, द्रव्यार्थिकनयमें अवस्थित शिष्योंके अनुग्रहके लिये ओघनिर्देश किया जाता है । तथा पर्यायार्थिकनयमें अवस्थित शिष्योंके अनुग्रहके लिये आदेशनिर्देश किया जाता है ।

इन दोनों निर्देशोंके अतिरिक्त और कोई तीसरा निर्देश है नहीं, क्योंकि, दोनों प्रकारके नयोंमें अवस्थित जीवोंके अतिरिक्त अन्य प्रकारके श्रोताओंका अभाव है, अतएव दो प्रकारसे ही निर्देश किया जाता है ।

---

१ मेरुरयं त्रयाणां लोकानां मानदंडः । अस्याधस्तलादधोलोकः । चूलिकामूलादूर्ध्वमूर्ध्वलोकः । मध्यमप्रमाणस्तिर्यग्विस्तीर्णस्तिर्यग्लोकः । त. रा. वा. ३, १०. इह च बहुसमभूमिभागे रत्नप्रभाभागे मेरुमध्ये अष्टप्रदेशो रुचको भवति, तस्योपरितनप्रस्तरस्योपरिष्टान्नव योजनशतानि यावज्जोतिश्चक्रस्योपरितलस्तावत् तिर्यग्लोकस्ततः परत ऊर्ध्वभागस्थितत्वात् ऊर्ध्वलोको देशोनसप्तरज्जुप्रमाणो रुचकस्याधस्तनप्रस्तरस्याधो नव योजनशतानि यावत्तावत्तिर्यग्लोकः, ततः परतोऽधोभागस्थितत्वादधोलोकः सातिरेकसप्तरज्जुप्रमाणः, अधोलोकोर्ध्वलोकयोर्मध्ये अष्टादशयोजनशतप्रमाणस्तिर्यग्भागस्थितत्वात् तिर्यग्लोक इति । स्थानां. ३, २. टीका.

'जहा उद्देसो तहा णिद्देसो' त्ति कट्टु ओघणिद्देसट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि-

ओघेण मिच्छाइट्ठी केवडि खेत्ते[1], सव्वलोगे[2] ॥ २ ॥

एदस्स सुत्तस्स अत्थो वुच्चदे। तं जहा- ओघणिद्देसो आदेसवुदासट्ठो। मिच्छाइट्ठिणिद्देसो सेसगुणट्ठाणपडिसेहट्ठो। केवडि खेत्ते इदि पुच्छा सुत्तस्स पमाणत्तप्पदुप्पायणफला। सव्वलोगे इदि खेत्तपमाणणिद्देसो। एत्थ लोगे त्ति वुत्ते सत्तरज्जूणं[3] घणो घेत्तव्वो[4]। कुदो ? एत्थ खेत्तपमाणाधियारे-

पल्लो सायर सूई पदरो य घणंगुलो य जगसेढी।
लोयपदरो य लोगो अट्ठ दु माणा मुणेयव्वो[5] ॥ ५ ॥

'जिस प्रकारसे उद्देश किया जाता है, उसी प्रकारसे निर्देश होता है' इस न्यायके अनुसार ओघनिर्देशके लिये उत्तर सूत्र कहते हैं-

ओघनिर्देशकी अपेक्षा मिथ्यादृष्टि जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं? सर्व लोकमें रहते हैं ॥ २ ॥

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं। वह इस प्रकार है- सूत्रमें 'ओघ' इस पदका निर्देश, आदेश प्ररूपणाके निराकरणके लिए आया है। 'मिथ्यादृष्टि' इस पदका निर्देश, शेष गुणस्थानोंके प्रतिषेधके लिए आया है। 'कितने क्षेत्रमें रहते हैं' इस पृच्छाका फल सूत्रकी प्रमाणता प्रतिपादन करना है। 'सर्व लोकमें' इस पदसे क्षेत्रके प्रमाणका निर्देश किया है। यहां सूत्रमें 'लोक' ऐसा सामान्य पद कहने पर सात राजुओंका घनात्मक लोक ग्रहण करना चाहिए। क्योंकि, यहां क्षेत्रप्रमाणाधिकारमें-

पल्योपम, सागरोपम, सूच्यंगुल, प्रतरांगुल, घनांगुल, जगत्श्रेणी, लोकप्रतर और लोक ये आठ मान जानना चाहिए ॥ ५ ॥

---

१ विवक्षित...जीवैर्वर्तमानकाले विविक्षितपदविशिष्टत्वेनावष्टब्धाकाशः क्षेत्रं। गो. जी. जी. प्र. टी. ५४३.

२ सामान्येन तावत् मिथ्यादृष्टीनां सर्वलोकः। स. सि. १, ८. मिच्छा उ सव्वलोए ॥ पञ्चसं. २, २६.

३ जगसेढीए सत्तमभागो रज्जू पमासंते। ति. प. १, १३२.

४ जगसेढिघणपमाणो लोयायासो सपंचदव्वट्ठिदो। ति. प. १, ९१. चउदस रज्जू लोओ बुद्धिकओ होइ सत्तरज्जुघणो। कर्म. ५ कर्म. ९७.

५ ति. प. १, ९३. त्रि. सा. ९२. पल्योपमस्य सागरोपमस्य च स्वरूपं ति. प. १, ९३-१३०; स. सि. ३, ३८; त. रा. वा. ३०, ३८. अद्धापल्यस्यार्धच्छेदेन शलाका विरलीकृत्य प्रत्येकमद्धापल्यप्रदानं कृत्वा अन्योन्यगुणिते यावंतश्छेदास्तावद्भिराकाशप्रदेशैर्मुक्तावली कृता सूच्यंगुलमित्युच्यते। तदेवापरेण सूच्यंगुलेन गुणितं प्रतरांगुलं। तत्प्रतरांगुलमपरेण सूच्यंगुलेनाभ्यस्तं

इदि एत्थ वुत्तलोगग्गहणादो। जदि एसो लोगो घेप्पदि, पंचदव्वाहारआगासस्स गहणं ण पावदे। कुदो ? तम्हि सत्तरज्जुघणपमाणमेत्तखेत्तस्सा[1]भावा। भावे वा –

हेट्ठा मज्झे उवरिं वेत्तासण-झल्लरी-मुइंगणिहो।
मज्झिमवित्थारेण य चोद्दसगुणमायदो लोगो[2] ॥ ६ ॥
लोगो अकट्टिमो खलु अणाइणिहणो सहावणिव्वत्तो।
जीवाजीवेहि फुडो णिच्चो तलरुक्खसंठाणो[3] ॥ ७ ॥
लोयस्स य विक्खंभो चउप्पयारो य होइ णायव्वो।
सत्तेक्कगो य पंचेक्कगो य रज्जू मुणेयव्वा[4] ॥ ८ ॥

इस गाथामें जो लोकका ग्रहण किया गया है उससे जाना जाता है कि यहां पर सात राजुके घनप्रमाण लोकका ग्रहण अभीष्ट है।

विशेषार्थ– एक प्रदेशवाली सात राजु लम्बी आकाश-प्रदेशपंक्तिको जगत्श्रेणी कहते हैं। तथा जगत्श्रेणीके वर्गको जगत्प्रतर और घनको घनलोक कहते हैं। गाथामें इसी क्रमसे जगत्श्रेणी, जगत्प्रतर और लोक पदका ग्रहण हुआ है। इससे ज्ञात होता है कि यहां पर लोकसे घनलोकका अभिप्राय है।

शंका– यदि यहांपर इसी घनलोकका ग्रहण किया जाता है, तो पांच द्रव्योंके आधारभूत आकाशका ग्रहण नहीं प्राप्त होता है; क्योंकि, उस लोकमें सात राजुके घनप्रमाणवाले क्षेत्रका अभाव है और यदि सद्भाव माना जावे तो–

नीचे वेत्रासन (वेंतके मूंढा) के समान, मध्यमें झल्लरीके समान और ऊपर मृदंगके समान आकारवाला; तथा मध्यमविस्तारसे अर्थात् एक राजुसे चौदह गुणा आयत (लम्बा) लोक है ॥ ६ ॥

यह लोक निश्चयतः अकृत्रिम है, अनादि-निधन है, स्वभावसे निर्मित है, जीव और अजीव द्रव्योंसे व्याप्त है, नित्य है, तथा तालवृक्षके आकारवाला है ॥ ७ ॥

लोकका विष्कम्भ (विस्तार) चार प्रकारका है ऐसा जानना चाहिए। जिसमेंसे अधोलोकके अन्तमें सात राजु, मध्यमलोकके पास एक राजु, ब्रह्मलोकके पास पांच राजु और ऊर्ध्वलोकके अन्तमें एक राजु विस्तार जानना चाहिये ॥ ८ ॥

घनांगुलं। असंख्येयानां वर्षाणां यावंतः समयास्तावत्खंडमद्धापल्यं कृतं, ततोऽसंख्येयान् खंडानपनीयासंख्येयमेकं भागं बुद्धया विरलीकृत्य एकेकस्मिन् घनांगुलं दत्वा परस्परेण गुणिता जगच्छ्रेणी। सा अपरया जगच्छ्रेण्याभ्यस्ता प्रतरलोकः। स एवापरया जगच्छ्रेण्या संवर्गितो घनलोकः। त. रा. वा. ३, ३८.

१ प्रतिषु– खेत्तस्समावा इति पाठः।

२ जंबू. प. ११, १०६.

३ त्रि. सा. ४ तत्र चतुर्थचरणे 'सव्वागासावयवो णिच्चो' इति पाठः।

४ जंबू. प. ११, १०७

एदाओ सुत्तगाहाओ अप्पमाणत्तं पावेंति त्ति ?

एत्थ परिहारो वुच्चदे । एत्थ लोगे त्ति वुत्ते पंचदव्वाहारआगासस्सेव गहणं, ण अण्णस्स । ‘ लोगपूरणगदो केवली केवडि खेत्ते, सव्वलोगे ’ इदि वयणादो । जदि लोगो सत्तरज्जुघणपमाणो ण होदि तो ‘लोगपूरणगदो केवली लोगस्स संखेज्जदि भागे’ इदि भणेज्ज । ण च मुदिंगायारलोगस्स पमाणगं पेक्खिऊण संखेज्जदिभागत्तमसिद्धं, गणिज्जमाणे तहोवलंभादो । तं जहा– मुदिंगायारलोयस्स सूइं चोद्दसरज्जुआयदं एगरज्जुविक्खंभं वट्टं लोगादो अवणिय पुध ट्ठवेदव्वं । एवं ठविय तस्स फलाणयणविहाणं भणिस्सामो । तं जहा– एदस्स मुहतिरियवट्टस्स एगागासपदेसबाहल्लस्स परिठओ एत्तिओ होदि ३७१/११३ । इममद्धेऊण विक्खंभद्धेण गुणिदे एत्तियं होदि ३७१/४५२ । अधोलोगभागमिच्छामो त्ति सत्तहि रज्जूहि गुणिदे खायफलमेत्तियं होदि ५ ३३७/४५२ । पुणो णिस्सूईखेत्तं चोद्दसरज्जुआयदं दो खंडाणि करिय तत्थ हेट्ठिमखंडं घेत्तूण उड्ढं फालिम[1] पसारिदे

• – ये पूर्वमें कही गई सूत्रगाथाएं अप्रमाणताको प्राप्त होती हैं ?

समाधान– अब यहां उक्त शंकाका परिहार करते हैं । इस प्रकृत सूत्रमें ‘ लोक ’ ऐसा पद कहने पर पांच द्रव्योंके आधारभूत आकाशका ही ग्रहण किया है, अन्यका नहीं, क्योंकि, ‘ लोकपूरणसमुद्घातगत केवली कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? सर्व लोकमें रहते हैं ’ इससे उक्त बात सिद्ध होती है । यदि लोक सात राजुके घनप्रमाण नहीं है, तो ‘लोकपूरणसमुद्घातगत केवली लोकके संख्यातवें भागमें रहते हैं ’ इस प्रकार कहना चाहिये और मृदंगाकार लोकके प्रमाणको देखकर अर्थात् उसकी अपेक्षासे, लोकपूरण समुद्घातगत केवलीका घनलोकके संख्यातवें भागमें रहना असिद्ध भी नहीं है, क्योंकि, गणना करने पर मृदंगाकार लोकका प्रमाण घनलोकके संख्यातवें भाग पाया जाता है । वह इस प्रकार है– चौदह राजुप्रमाण आयत, एक राजुप्रमाण विस्तृत और गोल आकारवाली, ऐसी मृदंगाकार लोककी सूचीको लोकके मध्यसे निकाल करके पृथक् स्थापित करना चाहिये । इस प्रकारसे स्थापित करके अब उसके फल अर्थात् घनफलको निकालनेका विधान कहते हैं । वह इस प्रकार है– मुखमें तिर्यक्रूपसे गोल और आकाशके एक प्रदेशप्रमाण बाहल्यवाली इस पूर्वोक्त सूचीकी परिधि ३७१/११३ इतनी होती है । (देखो आगे गाथा नं. १४) इस परिधिके प्रमाणको आधा करके, पुनः उसे एक राजुविष्कम्भके आधेसे गुणा करने पर, उसके क्षेत्रफलका प्रमाण ३७१/४५२ इतना होता है । अब हमें लोकके अधोभागका घनफल लाना इष्ट है, इसलिये उस क्षेत्रफलको सात राजुओंसे गुणा करने पर सात राजुप्रमाण लम्बी और एक राजुप्रमाण चौडी उक्त गोलसूचीका घनफल ५ ३३७/४५२ इतना होता है । फिर सूचीरहित चौदह राजु लम्बे लोकरूप क्षेत्रके मध्यलोकके पाससे दो खंड करके उनमेंसे नीचेके अर्थात् अधोलोकसम्बन्धी खंडको ग्रहण कर उसे

१ मु. प्रती पाठिय इति पाठः ।

सुप्पखेत्तं होऊण चेट्ठदि । तस्स मुहवित्थारो[1] $\frac{371}{113}$ । तलवित्थारो $22\frac{15}{113}$ । एत्थ मुहवित्थारेण सत्तरज्जुआयामेण छिदिदे दो तिकोणखेत्ताणि एयमायदचउरस्सखेत्तं च होइ । तत्थ ताव मज्झिमखेत्तफलमाणिज्जदे । एदस्स उस्सेहो सत्त रज्जूओ । विक्खंभो पुण एत्तिओ होदि $\frac{371}{113}$ । मुहम्मि एगागासपदेसबाहल्लं, तलम्मि तिण्णि रज्जुबाहल्लो त्ति सत्तहि रज्जूहि मुहवित्थारं गुणिय तलबाहल्लद्धेण गुणिदे मज्झिमखेत्तफलमेत्तियं होइ $34\frac{107}{226}$ । संपहि सेसदोखेत्ताणि सत्तरज्जुअवलंबयाणि तेरसुत्तरसदेण एगरज्जुं खंडिय तत्थ अट्ठेतालीसखंडब्भहिय-णवरज्जुभुजाणि भुजकोडिपाओग्गकण्णाणि

(एक ओरसे) ऊपरसे (लगाकर नीचेतक) काटकर पसारने पर सूर्प (सूपा) के आकारवाला क्षेत्र हो जाता है ।

विशेषार्थ— यहांपर शंकाकार, मृदंगाकार लोकको दृष्टिमें रखकर यह कथन कर रहा है, उसका भाव यह है कि कितने ही आचार्य अधोलोकका आकार चारों ओरसे गोल ऐसे वेत्रासनके समान मानते हैं । जो नीचे गोल आकारवाला तथा सात राजु चौड़ा है और ऊपर क्रमशः घटता हुआ मध्यलोकमें गोल आकारवाला तथा एक राजु चौड़ा है । इसके ठीक मध्यमें ऊपरसे नीचेतक स्थित सात राजु लम्बी एक राजु चौडी गोल आकारवाली त्रसनाली है । उसको यदि वेत्रासनाकार अधोलोकके बीचमेंसे निकालकर बचे हुए अधोलोकको एक ओरसे ऊपरसे नीचेतक काटकर पसार दिया जाय, तो उसका आकार ठीक सूपाके समान हो जाता है ।

इस सूर्पाकार क्षेत्रके मुखका विस्तार $\frac{371}{113}$ इतना है और तलका विस्तार $22\frac{15}{113}$ राजुप्रमाण है । इसे मुखविस्तारसे (अर्थात् मुखविस्तारके अन्तसे लगाकर दोनों ओर) सात राजु लम्बा नीचेकी ओर छेदनेपर दो त्रिकोण क्षेत्र और एक आयतचतुरस्रक्षेत्र, इस प्रकार तीन क्षेत्र हो जाते हैं ।

उक्त प्रकारसे बने हुए इन तीन क्षेत्रोंमेंसे पहले आयतचतुरस्र आकारवाले मध्यवर्ती क्षेत्रका घनफल निकालते हैं । इस आयतचतुरस्र क्षेत्रका उत्सेध (ऊंचाई) सात राजु है और विष्कम्भ $\frac{371}{113}$ इतने राजु है । मुखमें एक प्रदेशप्रमाण बाहल्य (मोटाई) है और तलभागमें तीन राजुप्रमाण बाहल्य है, इसलिए उत्सेधका प्रमाण जो सात राजु है उससे मुखके प्रमाणको गुणा करके तलभागका बाहल्य जो तीन राजु है उसके आधेसे अर्थात् डेढ़ राजुसे गुणा करनेपर मध्यम क्षेत्रका अर्थात् आयतचतुरस्र क्षेत्र घनफल $\frac{371}{113} \times \frac{7}{1} \times \frac{3}{2} = 34\frac{107}{226}$ इतना होता है ।

अब शेष जो दो त्रिकोण क्षेत्र हैं वे सात राजु लम्बे हैं और एकसौ तेरहसे एक राजुको खंडित कर उनमेंसे अड़तालीस खंड अधिक नौ राजु भुजावाले हैं अर्थात् उनका

---

१ मु. प्रती ' एत्तिओ होदि ' इति पाठः ।

कण्णभूमीए[1] आलिहिय दोसु वि दिसासु मज्झम्मि फालिदे तिण्णि तिण्णि खेत्ताणि होंति। तत्थ दो खेत्ताणि अध्दुट्ठरज्जुस्सेहाणि छव्वीसुत्तर-वेसदेहि एगरज्जुं खंडिय तत्थ एगट्ठिखंडब्भहियखंडसदेण सादिरेयचत्तारिरज्जुविक्खंभाणि दक्खिण-वामहेट्ठिमकोणे तिण्णि रज्जुबाहल्लाणि, दक्खिण-वामकोणेसु जहाकमेण उवरिम-हेट्ठिमेसु दिवड्ढरज्जुबाहल्लाणि, अवसेसदोकोणेसु एगागासबाहल्लाणि, अण्णत्थ कम-वड्ढिगद-बाहल्लाणि घेत्तूण तत्थ एगखेत्तस्सुवरि विदियखेत्ते विवज्जासं काऊण ट्ठविदे सव्वत्थ तिण्णि रज्जुबाहल्लखेत्तं होइ । एदस्स वित्थारमुस्सेहेण गुणिय वेहेण गुणिदे खायफलमेत्तियं होइ $४९\frac{२१७}{४५२}$ । अवसेसचत्तारि खेत्ताणि अध्दुट्ठरज्जुस्सेहाणि

अधोविस्तार $९\frac{४८}{११३}$ है। इसी विस्तारको यहां त्रिकोण क्षेत्रकी अपेक्षासे 'भुजा' कहा है। तथा उन दोनों त्रिकोण क्षेत्रोंका भुजा और कोटिके यथायोग्य संभवित कर्णका प्रमाण है। इन दोनों त्रिकोण क्षेत्रोंको कर्णभूमीसे लेकर दोनों ही दिशाओंमें बीचमेंसे काटनेपर तीन तीन क्षेत्र हो जाते हैं।

विशेषार्थ– यहां पर त्रिकोण क्षेत्रके भुजा और कोटिका प्रमाण तो दिया है, पर कर्णका प्रमाण नहीं दिया है। उसके निकालनेकी प्रक्रिया यह है कि भुजाके प्रमाणका वर्ग और कोटिके प्रमाणका वर्ग जितना हो, उन्हें जोड़कर उसका वर्गमूल निकालना चाहिये, जो वर्गमूलका प्रमाण आवे, वही कर्णरेखाका प्रमाण समझना चाहिए[2]।

उक्त प्रकारसे उत्पन्न हुए इन तीन तीन क्षेत्रोंमें एक एक आयतचतुरस्रक्षेत्र और दो दो त्रिकोणक्षेत्र जानना चाहिये। उनमें सात राजु उत्सेधवाले आयतचतुरस्र क्षेत्रके दायें बायें दोनों ओर जो दो आयतचतुरस्रक्षेत्र हैं, उनमें प्रत्येकका साढ़े तीन राजु उत्सेध है। तथा दो सौ छब्बीससे एक राजुको खंडित कर उनमें एकसौ इकसठ खंडोंसे अधिक चार राजु अर्थात् $४\frac{१६१}{२२६}$ प्रमाण विष्कम्भ है। तथा दक्षिण और वाम (दायें बायें) अधस्तन कोनपर तीन राजु बाहल्य है। अन्य दक्षिण वामकोणोंपर यथाक्रमसे ऊपर और नीचे डेढ़ राजु बाहल्य है। अवशिष्ट दो कोनोंपर एक आकाशप्रदेशप्रमाण बाहल्य है और अन्यत्र अर्थात् बीचमें क्रमसे वृद्धिको प्राप्त बाहल्य है। इस प्रकारके इन दोनों आयतचतुरस्र क्षेत्रोंको लेकर (उठाकर) उनमें एक क्षेत्रके ऊपर दूसरे क्षेत्रको विपर्यास अर्थात् उलटा करके स्थापित करने पर सर्वत्र तीन राजु बाहल्यवाला क्षेत्र हो जाता है। इसके विस्तारको उत्सेधसे गुणाकर पुनः वेध (मोटाई) से गुणा करनेपर घनफल $४\frac{१६१}{२२६} \times ३\frac{१}{२} \times ३ = ४९\frac{२१७}{४५२}$ इतना हो जाता है। अब अवशिष्ट जो चार त्रिकोण क्षेत्र हैं, वे साढे तीन राजु उत्सेधवाले हैं, तथा दोसौ छब्बीससे एक राजुको खंडित कर उनमेंसे एकसौ इकसठ खंडोंसे अधिक चार राजु अर्थात्

१ ता. १–२ प्रत्योः 'कम्म–' इति पाठः।

२ इष्टो बाहुर्यःस्यात् तत्स्पर्धिन्यां दिशीतरो बाहुः। त्र्यस्रे चतुरस्रे वा सा कोटिः कीर्तिता तज्ज्ञैः॥ तत्कृत्योर्योगपदं कर्णः। लीलावती क्षेत्रव्य. १.

छव्वीसुत्तरवेसदेहि एगरज्जुं खंडिय तत्थ एगट्ठिसदखंडेहि सादिरेयचत्तारिरज्जुभुजाणि कण्णक्खेत्ते[1] आलिहिय दोसु वि पासेसु मज्झम्मि छिण्णेसु चत्तारि आयदचउरंसखेत्ताणि अट्ठ तिकोणखेत्ताणि च होंति । एत्थ चदुण्हमायदचउरंसखेत्ताणं फलं पुव्विल्लदोखेत्त-फलस्स चउब्भागमेत्तं होदि । चदुसु वि खेत्तेसु बाहल्लाविरोहेण एगट्ठं कदेसु तिण्णिरज्जुबाहल्लं, पुव्विल्लखेत्तविक्खंभायामेहिंतो अद्धमेत्तविक्खंभायामपमाण-खेत्तुवलंभादो । किमट्ठं चदुण्हं पि मिलिदाणं तिण्णि रज्जुबाहल्लत्तं ? पुव्विल्लखेत्तबाहल्लादो संपहियखेत्ताणमद्धमेत्तबाहल्लं होदूण तदुस्सेहं पेक्खिदूण अद्धमेत्तुस्सेहदंसणादो । संपहि सेसअट्ठखेत्ताणि पुव्वं व खंडिय तत्थ सोलस तिकोण-खेत्ताणि अणंतरादीदखेत्ताणमुस्सेहादो विक्खंभादो बाहल्लादो च अद्धमेत्ताणि अवणिय अट्ठण्हमायदचउरंसखेत्ताणं फलमणंतराइक्कंतचदुखेत्तफलस्स चउभागमेत्तं होदि । एवं सोलसबत्तीस-चउसट्ठिआदिकमेण आयदचउरंसखेत्ताणि पुव्विल्लखेत्तफलादो चउब्भागमेत्तफलाणि होदूण गच्छंति जाव अविभागपलिच्छेदं पत्तं ति । एवमुप्पण्णा-

---

$४\frac{१}{२}\frac{६}{२}\frac{१}{६}$ राजु प्रमाण भुजावाले हैं । उन्हें कर्णक्षेत्रसे लगाकर दोनों ही पार्श्वभागोंमें बीचसे छिन्न करनेपर चार आयतचतुरस्रक्षेत्र और आठ त्रिकोणक्षेत्र हो जाते हैं ।

यहांपर चारों ही आयतचतुरस्र क्षेत्रोंका घनफल पहलेके दोनों आयतचतुरस्र क्षेत्रोंके घनफलके चतुर्थभाग मात्र होता है, क्योंकि, चारों ही क्षेत्रोंको बाहल्यके अविरोधसे इकट्ठा करनेपर अर्थात् यथाक्रमसे विपर्यास कर उलटा रखनेपर तीन राजु बाहल्य और पहलेके क्षेत्रके विष्कम्भ और आयामसे अर्धमात्र विष्कम्भ और आयामप्रमाणवाला क्षेत्र पाया जाता है ।

शंका-- इन चार आयतचतुरस्र क्षेत्रोंके मिलानेपर तीन राजु बाहल्य कैसे होता है ?

समाधान-- क्योंकि, पहले बताये हुये आयतचतुरस्र क्षेत्रके बाहल्यसे इस समयके आयतचतुरस्र क्षेत्रोंका बाहल्य आधा ही है और पहलेके उनके उत्सेधकी अपेक्षा अबके इनका उत्सेध भी आधा ही दिखाई देता है ।

अब शेष रहे आठ त्रिकोण क्षेत्रोंको पूर्वके समान ही खंडित करनेपर उनमें सोलह त्रिकोणक्षेत्र और आठ आयतचतुरस्रक्षेत्र हो जाते हैं ।

पहले बताये गये चार आयतचतुरस्र क्षेत्रोंका उत्सेधसे, विष्कम्भसे और बाहल्यसे अर्धप्रमाण निकालकर आठों ही आयतचतुरस्र क्षेत्रोंका घनफल अभी बताये गये चार आयतचतुरस्र क्षेत्रोंके घनफलके चतुर्थ भागमात्र होता है । इसी प्रकार सोलह, बत्तीस, चौंसठ आदिक्रमसे आयतचतुरस्र क्षेत्र पहले पहलेके आयतचतुरस्र क्षेत्रके घनफलोंके चतुर्थ भागमात्र घनफलवाले होते हुए तब तक चले जायेंगे जबतक कि अविभागप्रतिच्छेद अर्थात् एक परमाणु (प्रदेश) नहीं प्राप्त हो जायगा । इस प्रकारसे उत्पन्न हुए समस्त क्षेत्रोंके घनफलोंके जोड़नेका

---

१ ता. १-२-३ प्रतिषु 'कम्म' इति पाठः ।

सेसखेत्तफलमेलावणविहाणं वुच्चदे । तं जहा- सव्वखेत्तफलाणि चउगुणकमेण अवट्ठिदाणि त्ति कादूण तत्थ अंतिमखेत्तफलं चउहि[1] गुणिय रूवूण[2] तिगुणिदछेदेण ओवट्टिदे एत्तियं होइ $६५\frac{१}{१}\frac{३}{३}\frac{२}{५}\frac{०}{६}$ । अधोलोगस्स सव्वखेत्तफलसमासो $१०६\frac{२}{१}\frac{६}{३}\frac{१}{५}\frac{}{६}$ ।

संपहि उड्ढलोगखेत्तफलमाणेमो । तत्थ सूईखेत्तफलं पुव्वविहाणेण आणिदे एत्तियं होइ $५\frac{३}{४}\frac{३}{५}\frac{७}{२}$ । संपहि उवरिमअद्धं पंचरज्जुविक्खंभुद्देसे खंडिय तत्थ एगखंडं पुध ट्ठविय मज्झम्मि सेसखंडं उड्ढं फालिय पसारिदे सुप्पखेत्तं होदि । तस्स मुहवित्थारो एत्तिओ होदि $\frac{३}{१}\frac{७}{१}\frac{१}{३}$ । तलवित्थारो एत्तिओ होदि $१५\frac{९}{१}\frac{६}{१}\frac{}{६}$ । मुहम्मि एगागासपएस-बाहल्लं, तलम्मि मुहप्पमाणमज्झम्मि वेरज्जुबाहल्लं, पुणो कमहाणीए गंतूण हेट्ठिमदोकोणेसु एगागासबाहल्लं होदि । एदम्मि खेत्ते मुहवित्थारविक्खंभेण खंडिदे दोण्णि तिकोणखेत्ताणि एगमायदचउरंसखेत्तं च होदि । तत्थ आयदचउरंसखेत्तस्स

विधान कहते हैं । वह इस प्रकार है- सभी क्षेत्रोंका घनफल चतुर्गुणित क्रमसे अवस्थित है, इसलिए उनमें अन्तिम क्षेत्रफलको चारसे गुणा करके और चारमेंसे एक कम अर्थात् तीनसे भाग देनेपर घनफल $६५\frac{१}{१}\frac{३}{३}\frac{२}{५}\frac{२}{६}$ इतना होता है और अधोलोकके सभी क्षेत्रोंका घनफल $१०६\frac{२}{१}\frac{६}{३}\frac{१}{५}\frac{}{६}$ होता है ।

अब चारों ओरसे मृदंगाकार ऊर्ध्वलोकरूप क्षेत्रका घनफल निकालते हैं । उसमें एक राजु चौडे, सात राजु लम्बे और गोल आकारवाले सूचीरूप क्षेत्रका घनफल पहले अधोलोकमें कहे गये विधानसे निकालने पर $५\frac{३}{४}\frac{३}{५}\frac{७}{२}$ राजु इतना होता है । (इस सूचीको ऊर्ध्वलोकके मध्यभागसे निकालकर पृथक् स्थापन कर देना चाहिये ।) अब, लोकको मध्यलोकसे काटनेपर जो दो भाग पहले हुए थे उनमेंके ऊपरी अर्ध भागको, पांच राजु है विष्कम्भ जहांपर ऐसे ब्रह्मलोकके अन्तस्थित प्रदेशपर बीचसे खंडितकर उसमेंसे एक खंडको पृथक् स्थापनकर बचे हुए खंडको मध्यमें ऊपरसे नीचेतक फाड़कर पसारनेसे सूपाके आकारवाला क्षेत्र हो जाता है । उसके मुखका विस्तार $\frac{३}{१}\frac{७}{१}\frac{१}{३}$ इतना होता है । तथा तलविस्तार $१५\frac{९}{१}\frac{६}{१}\frac{}{३}$ इतना होता है । इस सूर्पक्षेत्रके मुखमें मोटाई आकाशके एक प्रदेश प्रमाण है और तलके मुखप्रमाण मध्यभागमें दो राजु मोटाई है, पुनः क्रमसे हानिको प्राप्त होती हुई अर्थात् कम होती हुई इसी तलभागके दोनों कोनों पर आकाशके एक प्रदेश प्रमाण मोटाई है । इस सूर्पक्षेत्रको, मुखविस्तार-प्रमाण विष्कम्भसे खंडित करने पर दो त्रिकोण क्षेत्र और एक आयतचतुरस्र क्षेत्र हो जाते हैं । उनमेंसे पहले आयतचतुरस्र क्षेत्रका जो साढ़े तीन राजु लम्बा है, तीन राजुसे

---

१ ता. ३ 'चउ' इत्यपि पाठः ।

२ मु. प्रतौ रूवूणं काऊण इति पाठः ।

अध्दुट्ठरज्जुवोहस्स सादिरेयतिण्णिरज्जुविक्खंभस्स तलम्मि बे रज्जु मुहम्मि एगागास-पएसबाहल्लस्स फलमाणेमो। तं जहा– विक्खंभेणुस्सेहं गुणेऊण ओवेहेणेगरज्जुणा गुणिदे मज्झिल्लखेत्तफलं होइ। तस्स पमाणमेदं $११\frac{१११}{२२६}$ ।[1] सेसदो तिकोणखेत्ताणि अध्दुट्ठरज्जुस्सेहाणि एगरज्जुं तेरसुत्तरसदेण खंडिय तत्थ बत्तीसखंडब्भहियछरज्जु-विक्खंभाणि पुव्वं व मज्झम्मि खंडिय तत्थुप्पण्णचत्तारि[2] तिकोणखेत्ताणि ओसारिय दोण्हमायदचउरंसखेत्ताणं पाऊणदोरज्जुस्सेहाणं तेरसुत्तरसदेण एगरज्जुं खंडिय तत्थ सोलसखंडब्भहियतिण्णिरज्जुविक्खंभाणं दो-एक्क-सुण्णेक्करज्जुबाहल्लाणं फलमाणेमो। तं जहा– एगखेत्तस्सुवरि विदियखेत्तं विवज्जासं काऊण ट्ठविदे बेरज्जुबाहल्लमेगं खेत्तं होइ। पुणो विक्खंभुस्सेहाणं संवग्गं काऊण ओवेहेण गुणिदे खेत्तफलं होदि। तस्स पमाणमेदं $१०\frac{२२५}{२२६}$ । पुणो सेसचउण्हं खेत्ताणं फलमेदस्स

कुछ अधिक अर्थात् $३\frac{३२}{११३}$ राजु चौड़ा है, तलमें दो राजु और मुखमें एक आकाश प्रदेश प्रमाण मोटा है, ऐसे उस आयतचतुरस्र क्षेत्रका घनफल निकालते है। वह इस प्रकार है– विष्कम्भ $\frac{३७१}{११३}$ से उत्सेध $\frac{७}{२}$ को गुणाकार पुनः उसे मोटाईके प्रमाण एक राजुसे गुणा करने पर मध्यम अर्थात् आयतचतुरस्र क्षेत्रका घनफल आ जाता है। उसका प्रमाण $\frac{३७१}{११३} \times \frac{७}{२} \times \frac{१}{१} = ११\frac{१११}{२२६}$ इतना होता है। शेष जो दो त्रिकोण क्षेत्र हैं, जो कि साढे तीन राजु ऊंचे तथा एक राजुको एक सौ तेरहसे खंडित कर उनमें बत्तीस खंडसे अधिक छह राजु अर्थात् $६\frac{३२}{११३}$ राजु चौडे हैं, उन्हें पहलेके समान ही मध्यमेंसे खंडित कर उनमें उत्पन्न हुए चार त्रिकोण क्षेत्रोंको दूर रख कर दोनों आयतचतुरस्र क्षेत्रोंका, जो कि पौने दो राजु ऊंचाईवाले, तथा एकसौ तेरहसे एक राजुको खंडित कर उनमें सोलह खंडोंसे अधिक तीन राजु अर्थात् $३\frac{१६}{११३}$ राजु प्रमाण चौडे, तथा क्रमशः दो, एक, शून्य और एक राजु मोटे हैं, उनके घनफलको निकालते हैं।

विशेषार्थ– यहां पर जो आयतचतुरस्र क्षेत्रकी मोटाई क्रमशः दो, एक, शून्य और एक राजु प्रमाण कही है, उसका अभिप्राय यह है कि ब्रह्मलोकके पासवाले भीतरी भागकी मोटाई दो राजु है। उसीके बाहरी भागकी मोटाई एक राजु है। कर्णरेखावाले क्षेत्रकी मोटाई शून्य या एक प्रदेश है और कोटिरेखाके बाधावाले ऊपरी क्षेत्रकी मोटाई एक राजु है।

वह इस प्रकार है– एक आयतचतुरस्र क्षेत्रके ऊपर दूसरे आयतचतुरस्र क्षेत्रको उलटा करके रखने पर दो राजुकी मोटाईवाला एक क्षेत्र हो जाता है। पुनः विष्कम्भ और उत्सेधका संवर्ग अर्थात् परस्पर गुणन करके वेधसे गुणा करने पर उक्त क्षेत्रका घनफल होता है

१ म प्रत्योः $\frac{१११}{४२६}$ इति पाठः।

२ प्रतिषु 'तत्थुप्पण्णा' इति पाठः।

चउभागमेत्तं होदि । कारणं सुगमं, अधोलोगपरूवणाए परूविदत्तादो । जेणेवं सव्वखेत्तफलाणि अणंतराइक्कंतखेत्तफलादो चउब्भागक्कमेणावट्ठिदाणि, तेण तेसिं फले एत्थ मेलाविदे एत्तियं होदि $१४\frac{४४९}{६७८}$ । उड्ढलोगखेत्तस्स सव्वफलसमासो एत्तिओ होइ $५८\frac{६७}{१३५६}$ ।[1] उड्ढाधोलोगखेत्तफलसमासो एत्तिओ होदि $१६४\frac{३२८}{१३५६}$ । तदो सिद्धं घणलोगस्स संखेज्जदिभागत्तं । ण च[2] एदव्वदिरित्तमण्णं सत्तरज्जुघणपमाणं लोगसण्णिदं खेत्तमत्थि, जेण पमाणलोगो छदव्वसमुदयलोगादो अण्णो होज्ज ? ण च लोगालोगेसु वि ट्ठिदसत्तरज्जुघणमेत्तागासपदेसाणं पमाणघणलोगववएसो, लोगसण्णाए जादिच्छियत्तप्पसंगा । होदु चे ण, सव्वागास-सेढि-पदर-घणाणं पि जादिच्छियसण्णा-

जिसका प्रमाण $\frac{७}{४} \times \frac{३५५}{११३} \times \frac{२}{१} = १०\frac{२२५}{२२६}$ इतना होता है । पुनः जो शेष चार त्रिकोण क्षेत्र हैं, उनका घनफल इस आयतचतुरस्रक्षेत्रके चतुर्थभागमात्र होता है । इसका कारण सुगम है, क्योंकि, अधोलोककी प्ररूपणामें कह आये हैं (पृ. १६) । चूंकि इस प्रकार सर्व त्रिकोण क्षेत्रोंके घनफल अनन्तर अतिक्रांत अर्थात् अभी पहले बताये गये क्षेत्रोंके घनफलसे चतुर्भागके क्रमसे अवस्थित हैं, इसलिये उनके घनफलको यहां अर्थात् $१०\frac{२२५}{२२६}$ में मिलानेपर $१४\frac{४४९}{६७८}$ इतना प्रमाण हो जाता है । ऊर्ध्वलोकका समस्त घनफल $५८\frac{६७}{१३५६}$ इतना होता है ।

विशेषार्थ– ऊर्ध्वलोकका यह घनफल इस प्रकार आता है– पहले जो प्रमाण बतलाया गया है, वह प्रमाण ऊर्ध्वलोकके विभक्त किये गये दो भागोंमेंसे एक भागका है, इसलिए दोनों खंडोंका घनफल लानेके लिए आयतचतुरस्रक्षेत्रके घनफलको दूना किया, तब $११\frac{१११}{२२६} \times \frac{२}{१} = २२\frac{२२२}{२२६}$ हुआ । तथा त्रिकोणक्षेत्रोंका भी घनफल दूना किया, तब $१४\frac{४४९}{६७८} \times \frac{२}{१} = २९\frac{२१९}{६७८}$ हुआ । इस प्रकार ऊर्ध्वलोककी सूचीका, आयतचतुरस्र और त्रिकोणक्षेत्रोंका समस्त घनफल जोड़ देनेपर $५\frac{३३७}{४५२} + २२\frac{२२२}{२२६} + २९\frac{२१९}{६७८} = ५८\frac{६७}{१३५६}$ होता है ।

ऊर्ध्वलोक और अधोलोकका घनफल जोड़ देनेपर $१०६\frac{२६१}{१३५६} + ५८\frac{६७}{१३५६} = १६४\frac{३२८}{१३५६}$ इतना प्रमाण होता है । इसलिए अन्य प्रकारसे माना हुआ लोक घनलोकके संख्यातवे भागप्रमाण सिद्ध हुआ और इस लोकके अतिरिक्त सात राजुके घनप्रमाण लोकसंज्ञक अन्य कोई क्षेत्र है नहीं, जिससे कि प्रमाणलोक छह द्रव्योंके समुदायरूप लोकसे भिन्न माना जावे और न लोकाकाश तथा अलोकाकाश ही स्थित सात राजुके घनमात्र आकाशप्रदेशोंके प्रमाणकी घनलोकसंज्ञा है, क्योंकि, ऐसा माननेपर लोकसंज्ञाके यादृच्छिकपनेका प्रसंग प्राप्त होता है ।

शंका– यदि लोकसंज्ञाको यादृच्छिकपनेका प्रसंग प्राप्त होता है तो हो जाओ ?

१ म १ प्रतौ $\frac{५८ \ \frac{६७}{}}{१३६६}$ म २ प्रतौ $\frac{५८ \ \frac{६६}{}}{१३५६}$ इति पाठः ।

२ 'भागत्तं । ण च' इति स्थाने क प्रतौ 'भागत्तं गणयवए', आ प्रतौ 'भागत्त गणिय', म प्रत्योः '-भागत्तणं व' इति पाठः ।

पसंगादो। किं च 'पदरगदो केवली केवडि खेत्ते, लोगे असंखेज्जदिभागूणे'[1]। उड्ढलोगेण दुवे उड्ढलोगा उड्ढलोगस्स तिभागेण देसूणेण सादिरेगा' इच्चेदस्स सादिरेयदुगुणत्तस्स उड्ढलोगादो कहणण्णहाणुववत्तीदो सिद्धं दोण्हं लोगाणमेगत्तमिदि। तम्हा पमाणलोगो छदव्वसमुदयलोगादो आगासपदेसगणणाए समाणो त्ति घेत्तव्वो। कधं लोगो पिंडिज्जमाणो सत्तरज्जुघणपमाणो होज्ज? वुच्चदे- लोगो णाम सव्वागासमज्झत्थो चोद्दसरज्जुआयामो दोसु वि दिसासु मूलद्ध-तिण्णि-चउब्भाग-चरिमेसु सत्तेक्कपंचेक्करज्जुरुंदो सव्वत्थ सत्तरज्जुबाहल्लो वड्ढि-हाणीहि, ट्ठिददोपेरंतो[2],

समाधान- नहीं, क्योंकि, संपूर्ण आकाश, जगत्श्रेणी, जगत्प्रतर और घनलोक, सभी संज्ञाओंको भी यादृच्छिकपनेका प्रसंग आ जायगा।

दूसरी बात यह है कि 'प्रतरसमुद्घातगत केवली कितने क्षेत्रमें रहते हैं? लोकके असंख्यातवें भागसे न्यून सर्व लोकमें रहते हैं। लोकके असंख्यातवें भागसे न्यून सर्व लोकका प्रमाण ऊर्ध्वलोकके कुछ कम तीसरे भागसे अधिक दो ऊर्ध्वलोकप्रमाण है।' इस प्रकार ऊर्ध्वलोककी अपेक्षा इस साधिक दुगुणताका कथन अन्यथा बन नहीं सकता था, अतएव प्रमाणलोक और द्रव्यलोक इन दोनों लोकोंका एकत्व सिद्ध हुआ।

विशेषार्थ- यहांपर प्रतरसमुद्घातगत केवलीके क्षेत्रका प्रमाण जो ऊर्ध्वलोककी अपेक्षा दो ऊर्ध्वलोक और उसीके कुछ कम तीसरे भागसे अधिक बताया है, उसका अभिप्राय यह है कि ऊर्ध्वलोकका प्रमाण १४७ घनराजु है इसे दूना करनेपर २९४ घनराजु हुए। इसमें १४७ का त्रिभाग ४९ घनराजुके जोड़ देनेपर ३४३ घनराजु होते हैं जो कि घनलोकका प्रमाण है। प्रतरसमुद्घातगत केवली लोकान्तमें स्थित वातवलयोंसे रुद्ध क्षेत्रको छोड़कर शेष संपूर्ण क्षेत्रको व्याप्त कर लेते हैं। इसलिये ३४३ घनराजुमेंसे वातवलयोंसे रुद्ध क्षेत्रको कम कर देना चाहिये। यही यहां पर देशोन क्षेत्रका अभिप्राय है।

इसलिये, उक्त प्रकारसे प्रमाणलोक और द्रव्यलोकके एक सिद्ध हो जानेपर, प्रमाणलोक छह द्रव्योंके समुदायवाले लोकसे आकाशके प्रदेशगणनाकी अपेक्षा समान है, ऐसा अर्थ स्वीकार करना चाहिये।

शंका- पिंडरूपसे एकत्रित करनेपर, अर्थात् घनरूप किया गया, यह लोक सात राजुके घनप्रमाण कैसे हो जाता है?

समाधान- उक्त शंकाका उत्तर कहते हैं- जो सर्व आकाशके मध्य भागमें स्थित है, चौदह राजु आयामवाला है, दोनों दिशाओंके अर्थात् पूर्व और पश्चिम दिशाके मूल, अर्धभाग, त्रि-चतुर्भाग और चरमभागमें यथाक्रमसे सात, एक, पांच और एक राजु विस्तारवाला है, तथा सर्वत्र सात राजु मोटा है, वृद्धि और हानिके द्वारा जिसके दोनों प्रान्तभाग स्थित हैं,

---

१ म प्रत्योः 'लोगो असंखेज्जदिभागूणो' इति पाठः।

२ उदयदलं आयाम वास पुव्वावरेण भूमिमुहे। सत्तेक्कपंच एक्क य रज्जू मज्झम्हि हाणिचयं॥ त्रि. सा. ११३.

चोद्दसरज्जुआयदरज्जुवग्गमुहलोगणालिगब्भो[1]। एसो पिंडिज्जमाणो सत्तरज्जु-घणपमाणो होदि[2]। जदि लोगो एरिसो ण घेप्पदि तो पदरगदकेवलिखेत्तसाहणट्ठं वुत्त दो-गाहाओ णिरत्थियाओ होज्ज, तत्थ वुत्तफलस्स अण्णहा संभवाभावा। काओ ताओ दो गाहाओ त्ति वुत्ते वुच्चदे–

> मुह-तलसमास-अद्धं वुस्सेधगुणं गुणं च वेधेण।
> घणगणिदं जाणेज्जो वेत्तासणसंठिये खेत्ते[3] ॥ ९ ॥

चौदह राजु लम्बी एक राजुके वर्गप्रमाण मुखवाली लोकनाली जिसके गर्भमें है, ऐसा यह पिंडरूप किया गया लोक सात राजुके घनप्रमाण अर्थात् ७ × ७ × ७ = ३४३ राजु है।

विशेषार्थ– लोकका पूर्वोक्त विस्तार इस प्रकार है– लोक सर्व आकाशके मध्यमें स्थित है। उसका आयाम चौदह राजु है। पूर्व-पश्चिम तलभाग सात राजु, लोकके आधे अर्थात् सात राजु ऊपर जाकर मध्यलोकमें एक राजु, लोकके पौन भाग अर्थात् साढ़े दस राजु ऊपर जाकर ब्रह्मलोकमें पांच पांच राजु और पूरे चौदह राजु ऊपर जाकर लोकके अन्तिम भागमें एक राजु विस्तार है। लोकका उत्तर-दक्षिण विस्तार सर्वत्र सात राजु है। इस प्रकारके लोकके बीच एक राजु चौड़ी चतुष्कोण और चौदह राजु ऊंची त्रसनाली है। पूर्व-पश्चिम भागमें लोक घट-बढ़ विस्तारवाला है। इस प्रकार लोक सात राजुके घनप्रमाण होता है।

यदि इस प्रकारका लोक ग्रहण नहीं किया जायगा, तो प्रतरसमुद्घातगत केवलीके क्षेत्रके साधनार्थ कही गई दो गाथाएं निरर्थक हो जावेंगी, क्योंकि, उन गाथाओंमें कहा गया घनफल लोकको अन्य प्रकारसे माननेपर संभव नहीं है।

शंका– वे दोनों गाथाएं कौनसी हैं?

समाधान– ऐसी शंका करनेपर कहते हैं–

मुखभूमि और तलभूमिके प्रमाणको जोड़कर आधा करो, पुनः उसे उत्सेधसे गुणा करो, पुनः मोटाईसे गुणा करो। ऐसा करनेपर वेत्रासन आकारसे स्थित अधोलोकरूप क्षेत्रका घनफल जानना चाहिए ॥ ९ ॥

विशेषार्थ– वेत्रासन आकारवाले अधोलोकके मुखविस्तारका प्रमाण एक राजु है और तलविस्तारका प्रमाण सात राजु है। इन दोनोंको जोड़नेपर आठ हुए। उसे आधा कर अधोलोककी ऊंचाईके प्रमाण सात राजुसे गुणा करनेपर अट्ठाईस हुए। इस संख्याको अधोलोककी उत्तर-दक्षिण विस्तारकी मोटाई सात राजुसे गुणा करनेपर एकसौ छ्यानवे राजु हुए। यही अधोलोकका घनफल है। जैसे– ७ + १ = ८; ८ ÷ २ = ४; ४ × ७ = २८; २८×७=१९६ घनराजु।

---

१ लोयबहुमज्झदेसे रुक्खे सारव्व रज्जुपदरजुदा। चोद्दसरज्जुत्तुंगा तसणाली होदि गुणणामा ॥ त्रि. सा. १४३.

२ सव्वागासमणंतं तस्स य बहुमज्झदेसभागम्हि। लोगोऽसंखपदेसो जगसेढिघणप्पमाणो हु ॥ त्रि. सा. ३.

३ ति. प. १, १६५. जंबू. प. ११, १०८.